# मंगल प्रवचन *

श्रीयुत मोतीचन्द भाईने मेरे परिचयमें कहा है कि मैं बीसवीं शताब्दीके विचारप्रवाहों और दृष्टि-बिन्दुओंसे परिचित हूँ। उनके इस कथनमें यदि सत्य है तो मैं अपनी दृष्टिसे उसका स्पष्टीकरण करना चाहता हूँ। ८०० की जन-संख्यावाले एक छोटेसे गन्दे गाँवमें मेरा जन्म और पालन हुआ, जहाँ आधुनिक संस्कारों, शिक्षा और साधनोंका सर्वथा अभाव था, ऐसे वातावरणमें, उन्नीसवीं शताब्दीमें मैं पला और पढ़ा लिखा। गुजराती ग्रामीण पाठशालासे आगे मेरे लिए शिक्षाका कोई वातावरण था ही नहीं। मुझे जहाँ तक याद है, मैंने कोई बीसेक वर्षकी उम्रमें एक साम्प्रदायिक मासिक पत्रका नाम सुना था। १९ वीं अथवा २० वीं शताब्दीके कालेजों और विश्वविद्यालयकी शिक्षाका लाभ मुझे नहीं मिला। इस दृष्टिसे मुझे १९ वींका ही क्यों एक तरहसे चौदहवीं शताब्दीका गिनना चाहिए।

यह सब सत्य होते हुए भी उनके कथनानुसार यदि मैं २० वीं शताब्दीका हूँ तो वह इसी अर्थमें कि किसी भी काल, देश और विषयके प्राचीन अथवा नवीन विचार जिस समय मेरे सामने आते हैं उस समय मैं उनका सभी प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त होकर विचार करता हूँ और यथाशक्ति सत्यासत्यका निर्णय करनेका प्रयत्न करता हूँ। इस प्रयत्नमें जाति, धर्म, सम्प्रदाय, शास्त्र अथवा भाषाके कदाग्रह या पूर्वग्रह मुझे शायद ही जकड़ रखते होंगे। मैं आचरण कर सकता हूँ या नहीं, यह प्रश्न पुरुषार्थका है किन्तु जिज्ञासा और विचारकी दृष्टिसे मैं अपने मनके सभी द्वार पूर्ण रूपसे खुले रखता हूँ। मुझे इसकी पूरी चिन्ता रहती है कि कोई ज्ञातव्य सत्यांश पूर्वग्रह और उपेक्षाके कारण छूट न जाय। मनको पूर्वग्रहों और संकुचितताके बन्धनोंसे परे रखकर तथ्य जानने, विचारने और स्वीकार करनेकी ओर रुचि और तत्परता रखना ही यदि २० वीं शताब्दीका लक्षण हो तो मैं उस अर्थमें अवश्य ही २० वीं शताब्दीका हूँ, चाहे

* ता० १४।५।४५ के दिन नये वर्षके सत्रारंभके प्रसंगपर श्रीमहावीर-जैन-विद्यालयके विद्यार्थियोंके समक्ष किया हुआ मंगल प्रवचन।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे अर्थमें भले ही १९ वीं या १४ वीं शताब्दीका गिना जाऊँ। मेरा विश्वास है कि सत्यकी जिज्ञासा और शोध किसी एक शताब्दीकी चीज नहीं। प्रत्येक शताब्दी और युगमें चाहनेवालोंके लिए हमेशा उनके द्वार खुले रहते हैं और दूसरोंके लिए किसी भी शताब्दी और युगमें बन्द रहते हैं।

इस व्यक्तिगत चर्चाद्वारा मैं आप लोगोंका ध्यान दो बातोंकी ओर खींचना चाहता हूँ। एक तो जीवनमें हमेशा विद्यार्थी-अवस्था बनाए रखना और दूसरे विद्यार्थीपनको मुक्त मनसे अर्थात् निर्बन्धन और निर्भय होकर विकसित करते रहना।

मनोविज्ञानकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो विद्यार्थी-अवस्थाके अर्थात् संस्कार ग्रहण करनेकी योग्यताके बीज जिस समय बालकके माता पिता दाम्पत्य-जीवनमें प्रवेश करते हैं उसी समयसे मनोभूमिका रूपसे संचित होने लगते हैं और गर्भाधानके समयसे व्यक्त रूप धारण करने लगते हैं। किन्तु हमारा गुलाम मानस इस सत्यको नहीं समझ पाता। जिनको शिशु, किशोर और कुमारा-वस्थाके विद्यार्थी-जीवनमें सावधानीसे सुविचारित मार्गदर्शन मिला हो, ऐसे विद्यार्थी हमारे यहाँ बहुत कम हैं। हमारे यहाँके सामान्य विद्यार्थीका जीवन नदीके पत्थरोंकी भाँति आकस्मिक रीतिसे ही गढ़ा जाता और आगे बढ़ता है। नदीके पत्थर जैसे बारबार पानीके प्रवाहके बलसे घिसते घिसते किसी समय खुद ही गोल गोल सुन्दर आकार धारण करते हैं उसी प्रकार हमारा सामान्य विद्यार्थी-वर्ग पाठशाला, स्कूल, समाज, राज्य और धर्मद्वारा नियंत्रित शिक्षण-प्रणालीकी चक्कीके बीचसे गुजरता हुआ किसी न किसी रूपमें गढ़ा जाता है। १६ वर्ष तकका विद्यार्थी-जीवन दूसरोंके छननेसे विद्या-पान करनेमें बीतता है। अर्थात् हमारे यहाँ वास्तविक विद्यार्थी-जीवनका प्रारंभ स्कूल छोड़कर कालेजमें प्रवेश करते समय ही होता है। इस समय विद्यार्थीका मानस इतना पक जाता है कि अब वह अपने आप क्या पढ़ना, क्या न पढ़ना, क्या सत्य और क्या असत्य, क्या उपयोगी क्या अनुपयोगी, यह सब सोच सकता है। इसलिए विद्यार्थी-जीवनमें कालेज-काल बहुत महत्त्वका है। पहलेकी अपक्वावस्थामें रही हुई त्रुटियों और भूलोंको सुधारनेके उपरान्त जो सारे जीवनको स्पर्श करे और उपयोगी हो, ऐसी पूरी तैयारी इसी जीवनमें करनी होती है। उस समय इतना उत्तर-दायित्व समझने और निभाने जितनी बुद्धि और शारीरिक तैयारी भी होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए इस समय विद्यार्थीका जरा-सा भी प्रमादी होना जीवनके मध्यबिन्दुपर कुठाराघात करना है।

मैं थोड़ा बहुत कालेजके विद्यार्थियोंके बीच रहा हूँ और मैंने देखा है कि उनमेंसे बहुत कम विद्यार्थी प्राप्त समय और शक्तिका संपूर्ण जागृतिपूर्वक उपयोग करते हैं। किसी न किसी तरह परीक्षा पास करनेका लक्ष्य होनेसे विद्यार्थीके बहुमूल्य समयका और शक्तिका ठीक उपयोग नहीं हो पाता। मेरे एक मित्रने—जो कि इस समय कुशल वकील और प्रजासेवक हैं, मुझसे कहा कि हम विद्यार्थी—खासकर बुद्धिमान् गिने जानेवाले विद्यार्थी—रात और दिनका बहुत बड़ा भाग गप्पें हाँकने और अनावश्यक वाग्युद्ध करनेमें व्यतीत कर देते थे और यह मान बैठे थे कि परीक्षा पास करनेमें क्या है? जब परीक्षा समीप आवेगी, तब तैयारी कर लेंगे और वैसा कर भी लेते थे। किन्तु जब बी० ए० पास हुए और आगे उच्च अध्ययनका विचार किया तब मालूम हुआ कि हमने प्रारंभके चार वर्षोंका बहुत-सा समय व्यर्थ ही बरबाद कर दिया है। उस समय अपने पूरे सामर्थ्य और समयका ठीक ढंगसे नियमित सदुपयोग किया होता, तो हमने कालेज-जीवनमें जितना प्राप्त किया उससे बहुत अधिक प्राप्त कर लेते। मैं समझता हूँ कि मेरे मित्रकी बात बिलकुल सच्ची है और वह कालेजके प्रत्येक विद्यार्थीपर कम या अधिक अंशमें लागू होती है। इसलिए मैं प्रत्येक विद्यार्थीका ध्यान जो इस समय कालेजमें नया प्रविष्ट हुआ हो या आगे बढ़ा हो, इस ओर खींचता हूँ। कालेजके जीवनमें इतने अच्छे अवसर प्राप्त होते हैं कि यदि मनुष्य सोचे तो अपना संपूर्ण नवसर्जन कर सकता है। वहाँ भिन्न भिन्न विषयोंके समर्थ अध्यापक, अच्छेसे अच्छा पुस्तकालय और नये रक्तके उत्साहसे उफनते हुए विद्यार्थियोंका सहचार जीवनको बनानेकी अमूल्य सम्पत्ति है। केवल उसका उपयोग करनेकी कला हाथ आनी चाहिए।

## जीवन-कला

विद्यार्थी-जीवनमें यदि कोई सिद्ध करने योग्य तत्त्व है, तो वह है जीवन-कला। जो जीनेकी कलाको हस्तगत कर लेता है वह साधन तथा सुविधाकी कमीके विषयमें कभी शिकायत नहीं करता। वह तो अपने सामने जितने और जैसे साधन होते हैं, जितनी और जैसी सुविधायें होती हैं, उनका इतने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुन्दर ढंगसे उपयोग करता है कि उसीमेंसे उसके सामने अपने आप नये साधनोंकी सृष्टि खड़ी हो जाती है। वे बिना बुलाये आकर सामने खड़े हो जाते हैं। जो इस प्रकारकी जीवन-कलासे अपरिचित होता है वह हमेशा यह नहीं, वह नहीं, ऐसा नहीं, वैसा नहीं, इस ढंगकी शिकायत करता ही रहता है। उसके सामने चाहे जैसे और चाहे जितने साधन रहें वह उनका मूल्य नहीं समझ सकता। क्योंकि जंगलमें मंगल करनेकी कलासे वह अपरिचित होता है। परिणामतः ऐसा विद्यार्थी प्राप्त सुविधाके लाभसे तो वंचित रह ही जाता है साथ ही भावी सुविधाकी प्राप्ति उसके मनोराज्यमें रहकर उलटी व्याकुलता पैदा कर देती है। इसलिए हम किसी भी क्षेत्रमें हों और कुछ भी करते हों, जीवन-कला सबसे पहले आवश्यक है। जीवन-कला अर्थात् कमसे कम और नगण्य साधन सामग्रीसे भी संतुष्ट रहना, आगे बढ़नेमें उसका उपयोग कर लेना और स्वपुरुषार्थसे अपनी इच्छित सृष्टि खड़ी कर लेना।

असुविधाओंका अतिभार यदि जीवनको कुचल सकता है, तो सुविधाओंका ढेर भी वही कर सकता है। जिसके सामने बहुत सुविधाएँ होती हैं वह हमेशा प्रगति कर सकता है अथवा करता है, ऐसा कोई ध्रुव नियम नहीं। इसके विपरीत जो अधिक असुविधा अथवा कठिनाईमें होता है वह पीछे रह जाता है अथवा कुचला जाता है, यह भी कोई ध्रुव नियम नहीं। ध्रुव नियम तो यह है कि बुद्धि और पुरुषार्थ होने पर प्रत्येक स्थितिमें आगे बढ़ा जा सकता है। जिसमें इस तत्त्वको विकसित करनेकी भूख होती है वह सुविधा असुविधाकी झंझटमें नहीं पड़ता। कई बार तो वह 'विपदः सन्तु नः शश्वत्' कुन्तीके इस वाक्यसे विपत्तियोंका आह्वान करता है।

मैंने एक ऐसे महाराष्ट्र विद्यार्थीको देखा था जो माता-पिताकी ओरसे मिलनेवाली सभी सुविधाओंको छोड़कर अपने पुरुषार्थसे ही कालेजमें पढ़ता था और बी. एस. सी. का अभ्यास करनेके साथ साथ खर्चयोग्य कमानेके उपरान्त स्वयं भोजन पकाकर थोड़े खर्चमें जीनेकी कला सिद्ध करता था। मैंने उससे पूछा कि "पढ़ने लिखनेमें बहुत बाधा पड़ती होगी?" उसने कहा कि "मैंने आरंभसे ही इसी ढंगसे जीना सीखा है कि आरोग्य बना रहे, और विद्याभ्यासके साथ साथ स्वाश्रयवृत्तिमें आत्म-विश्वास बढ़ता चला जाय।" अन्तमें उसने उच्च श्रेणीमें बी. एस. सी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। हम यह जानते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं कि व्यापारीवृत्तिके माता-पिता अपनी सन्ततिके लिए अधिकसे अधिक सम्पत्तिका उत्तराधिकार दे जानेकी इच्छा रखते हैं। वे कई पीढ़ी तककी स्वसंततिके सुखकी चिन्ता करते हैं किन्तु इसका परिणाम उलटा ही होता है और उनकी संततिके सुखकी धारणा धूलमें मिल जाती है। इसलिए मेरी दृष्टिसे जीवनकी सबसे बड़ी खूबी यही है कि हम चाहे जैसी स्थितिमें हों और चाहे जहाँ हों अपनी विद्यार्थी-अवस्था बनाए रखें और उसका उत्तरोत्तर विकास करते जायँ।

## खुला हुआ और निर्भय मन

ज्ञान अथवा विद्या केवल बहुत पढ़नेसे ही मिलती है, ऐसी बात नहीं। कम या अधिक पढ़ना यह रुचि, शक्ति और सुविधाका प्रश्न है। कमसे कम पढ़नेपर भी यदि अधिक सिद्धि और लाभ प्राप्त करना हो तो उसकी अनिवार्य शर्त यह है कि मनको खुला रखना और सत्य-जिज्ञासा रखकर जीवनमें पूर्वग्रहों अथवा रूढ़ संस्कारोंको अवकाश न देना। मेरा अनुभव यह है कि इसके लिए सर्व प्रथम निर्भयताकी आवश्यकता है। धर्मका यदि कोई सच्चा और उपयोगी अर्थ है तो वह है निर्भयतापूर्वक सत्यकी खोज। तत्त्वज्ञान सत्य-शोधनका एक मार्ग है। किसी भी विषयके अध्ययनमें धर्म और तत्त्वज्ञानका संबंध रहता ही है। ये दोनों वस्तुएँ किसी चौकेमें नहीं बाँधी जा सकतीं। यदि मनके सभी द्वार सत्यके लिए खुले हों और उसकी पृष्ठभूमिमें निर्भयता हो, तो जो कुछ विचारा जाय अथवा किया जाय, सब तत्त्व-ज्ञान और धर्ममें समाविष्ट हो जाता है।

## जीवन-संस्कृति

जीवनमेंसे गंदगी और दुर्बलताको दूरकर उनके स्थानपर सर्वांगीण स्वच्छता और सामञ्जस्यपूर्ण बलका निर्माण करना, यही जीवनकी सच्ची संस्कृति है। यही वस्तु प्राचीन कालसे प्रत्येक देश और जातिमें धर्मके नामसे प्रसिद्ध है। हमारे देशमें संस्कृतिकी साधना सहस्रों वर्ष पूर्व प्रारंभ हुई और आज भी चलती है। इस साधनाके लिए भारतका नाम सुविख्यात है। ऐसा होते हुए भी यहाँ धर्मका नाम ग्लानि उत्पन्न करनेवाला हो गया है और तत्त्वज्ञान निरर्थक कल्पनाओंमें गिना जाने लगा है। इसका क्या कारण है? इसका उत्तर धर्मगुरुओं, धर्म-शिक्षा और धर्म-संस्था ओंकी जड़ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और निष्क्रियतामें मिल जाता है। धर्म अथवा तत्त्वज्ञान अपने आपमें तो जीवनका सर्वव्यापी सौरभ है। परंतु इसमें जो दुर्गंध आने लगी है, वह दाम्भिक ठेकेदारोंके कारण। जिस प्रकार कच्चा अन्न अजीर्ण करता है, पर इससे कुछ भोजन मात्र ही त्याज्य नहीं हो जाता और जैसे ताजे और पोषक अन्नके बिना जीवन नहीं चल सकता, उसी प्रकार जड़ता-पोषक धर्मका कलेवर त्याज्य होते हुए भी सच्ची संस्कृतिके बिना मानवता अथवा राष्ट्रीयता नहीं टिक सकती।

व्यक्तिकी सारी शक्तियाँ, सिद्धियाँ और प्रवृत्तियाँ जब एक मात्र सामाजिक कल्याणकी दिशामें लग जाती हैं, तभी धर्म या संस्कृति चरितार्थ होती है। धर्म, संस्कृति और तत्त्वज्ञानकी विकृत विचारधारा दूर करने और शताब्दियों पुराने भ्रमोंको मिटानेके लिए भी संस्कृतिका सच्चा और गहरा ज्ञान आवश्यक है।

## इस दृष्टिसे गाँधीजी

हम लोगोंको मालूम है कि गाँधीजी एक महान् राजपुरुष हैं। उनकी राजकीय प्रवृत्ति और हलचलके मूलमें सतत प्रवाहित होनेवाले अमृतके झरनेको उत्पन्न करनेवाला यदि कोई अटूट उद्गम-स्थान है तो वह है उनका संस्कृति-विषयक सच्चा विवेक। उनकी निर्णायक शक्ति, सुनिर्णयपर जमे रहनेकी दृढ़ता और किसी भी प्रकारके भिन्न दृष्टिकोणको सहानुभूतिसे समझनेकी महानुभावता, ये सब उनके संस्कृतिके सच्चे विवेकके आभारी हैं। इसके अतिरिक्त उनके पास अन्य कोई धर्म नहीं। ऐसा संस्कृतिप्रधान विद्याका वातावरण तैयार करना जिस प्रकार संस्थाके संचालकों और शिक्षकोंपर निर्भर है उसी प्रकार विद्यार्थियोंपर भी उसका बहुत कुछ आधार है।

## व्यवसायियों और कुटुम्बियोंसे

हम मानते आये हैं कि जो कुछ सीखनेका है वह तो केवल विद्यार्थियोंके लिए है। हम व्यवसाय या गृहस्थीमें फँसे हुए क्या सीखें? और कैसे सीखें? किन्तु यह मान्यता बिलकुल गलत है। मॉण्टेसरीकी शिक्षण-पद्धतिमें केवल शिशु और बालकके शिक्षणपर ही भार नहीं दिया जाता अपितु माता-पिताओंके सुसंस्कारोंकी ओर भी संकेत किया जाता है। ऐसा होने पर ही शिशु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और बालकोंका जीवन घर और पाठशालाके संस्कारोंके संघर्षके बीच स्थिर रह सकता है। यही बात बड़ी उम्रके विद्यार्थियोंके विषयमें भी है। प्रत्येक व्यवसायी अथवा गृहस्थ, अपने बचे हुए समय और शक्तिका उपयोग सुसंस्कार ग्रहण करनेमें कर सकता है। इतना ही नहीं उसे वैसा करना भी चाहिए, अन्यथा उसके और उसकी संततिके बीच ऐसी दीवाल खड़ी हो जानेवाली है कि संतति उसे दोष देगी और वह संततिपर दोष मढ़ेगा। ऐसी स्थिति कदापि ठीक नहीं कि संतति कहे कि माता पिता बहमी, जड़, और रूढ़िगामी हैं और माता-पिता कहें कि पढ़े लिखे विद्यार्थी केवल हवामें उड़ते हैं। माता-पिताओं और विद्यार्थियोंके बीचकी खाई अधिक गहरी न हो, इसका रामबाण इलाज माता-पिताओंके ही हाथमें है, और वह इलाज है अपनी समझको शुद्ध करनेका प्रयत्न।

प्रबुद्ध जैन
१५-९-४२

अनु०—**मोहनलाल मेहता**

---

# धार्मिक शिक्षाका प्रश्न

धार्मिक शिक्षा देना चाहिए या नहीं, इस प्रश्नको लेकर मुख्य रूपसे आमने सामनेके छोरोंपर खड़े हुए दो वर्ग नजर आते हैं। एक वर्ग वह है जो धार्मिक शिक्षा देने दिलानेके लिए बहुत आग्रह करता है जब कि दूसरा वर्ग इस विषयमें उदासीन ही नहीं है अपितु अक्सर विरोध भी करता है। यह स्थिति केवल जैन समाजकी ही नहीं प्रायः सभी समाजोंकी है। हमें देखना चाहिए कि विरोध करनेवाला विरोध क्यों करता है? क्या उसे शिक्षाके प्रति अरुचि है या धर्मके नामसे सिखाई जानेवाली बातोंके प्रति द्वेष है? और इस अरुचि या द्वेषका कारण क्या है? इसी प्रकार धार्मिक शिक्षाके प्रति आग्रह रखनेवाला किस धर्मकी शिक्षाके विषयमें आग्रह रखता है और उस आग्रहके मूलमें क्या है?

विरोध करनेवालेकी शिक्षाके प्रति उतनी ही ममता है जितनी धर्म-शिक्षाके आग्रहीकी। धर्मके प्रति भी उसकी अरुचि नहीं हो सकती, यदि वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org